जनसत्ता



# स्पष्ट रुख

दो-ढाई महीनों में यह तीसरा मौका है जब भारत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि कश्मीर मसले पर वह तीसरे पक्ष की मध्यस्थता स्वीकार नहीं करेगा। संयुक्त राष्ट्र महासभा के सत्र में हिस्सा लेकर दिल्ली लौटे विदेश मंत्री एस जयशंकर ने फिर इसी रुख को दोहराया है कि कश्मीर मुद्दे पर हम कोई मध्यस्थता स्वीकार नहीं करेंगे। इस मुद्दे पर जो भी बातचीत होनी है, वह द्विपक्षीय ही होगी। पिछले चार दशकों में भारत का यही स्पष्ट रुख है और हम इसी पर कायम हैं। यह बात हाल में एक बार फिर इसलिए उठी कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने कश्मीर मामले पर भारत और पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता की फिर पेशकश कर डाली। लेकिन विदेश मंत्री का स्पष्ट रुख बता रहा है कि कश्मीर के मुद्दे पर भारत न तो कभी मध्यस्थता का पक्षधर रहा है, न रहेगा। भारत हमेशा से कहता आया है कि जब कश्मीर समस्या दो देशों के बीच की है तो इसमें किसी तीसरे देश को बीच में क्यों पड़ने देना चाहिए! सवाल है कि भारत और पाकिस्तान आपस में क्यों नहीं बात कर सकते? भारत तो कहता ही रहा है कि वह कश्मीर सहित हर मुद्दे पर पड़ोसी देश के साथ बात करने को तैयार है, बशर्ते वह पहले सीमापार आतंकवाद बंद करे। पर पाकिस्तान ऐसा इसलिए नहीं करता कि कश्मीर को लेकर उसकी मंशा ही साफ नहीं है।

पाकिस्तान कश्मीर को लेकर जिस रणनीति पर चल रहा है, उससे मामला कभी नहीं सुलझने वाला। वह चाहता है कि इस विवाद में कोई ऐसा तीसरा पक्ष बीच में पड़ जाए जो उसके पक्ष में फैसला करवाए। ऐसे में उसे अमेरिका जैसे महाबली देश से बड़ी उम्मीदें हैं और इसीलिए अमेरिका की ओर से भी समय-समय पर मध्यस्थता की बात उठती रही है। इस साल जुलाई के आखिरी हफ्ते में कश्मीर के मुद्दे पर ट्रंप के एक गैर-जिम्मेदाराना बयान ने उस वक्त तूफान खड़ा कर दिया था जब उन्होंने वाइट हाउस में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान के स्वागत के बाद मीडिया से बातचीत में यह कह डाला कि भारत ने उनसे कश्मीर मसले पर मध्यस्थता करने को कहा है। ट्रंप का कहना था कि मैं भारत के प्रधानमंत्री से मिला था और उन्होंने मुझसे कहा था कि क्या आप कश्मीर मामले में मध्यस्थता करेंगे। लेकिन भारत ने ट्रंप के इस बयान पर कड़ी नाराजगी जाहिर करते हुए जोरदार खंडन किया था और दो-टूक कहा था कि कश्मीर को लेकर उसकी नीति में कोई बदलाव नहीं आया है और भारत के प्रधानमंत्री ने अमेरिकी राष्ट्रपति से ऐसी कोई बात नहीं की।

अगर पाकिस्तान वाकई कश्मीर मसले पर कोई सार्थक वार्ता करना चाहता है तो उसे दूसरे देशों और अंतरराष्ट्रीय मंचों के बजाय खुद सकारात्मक पहल करनी चाहिए। मध्यस्थता की बात तो वह पक्ष करता है जो अपने स्तर पर ऐसी समस्याओं का समाधान कर पाने में खुद को अक्षम पाता हो। सवाल है कि पाकिस्तान को मध्यस्थता की जरूरत क्यों महसूस हो रही है। उसे लगता है कि मध्यस्थता से मामला उसके पक्ष में चला जाएगा। पर ऐसा संभव है नहीं। पाकिस्तान अपनी असलियत अच्छी तरह समझता है। आतंकवाद के मुद्दे पर पूरी दुनिया उसके खिलाफ है। कश्मीर से अनुच्छेद 370 को निष्क्रिय किए जाने के मुद्दे को भी दुनिया भर में उठाया और सहानुभूति बटोरने की कोशिश की, लेकिन कहीं कामयाबी नहीं मिली। ऐसे में भारत के नहीं चाहने पर कश्मीर मसले पर कोई क्यों मध्यस्थता करेगा, यह सोचने की बात है।

# संकट का पानी

आमतौर पर हर साल ही यमुना में प्रदूषण की वजह से दिल्ली में पेयजल तक का संकट जब गहरा जाता है, तब जाकर सरकार इस दिशा में सक्रिय होती है और इसे दुरुस्त करने का आश्वासन देती है। लेकिन फिर थोड़े वक्त के बाद जब मसले का तात्कालिक तौर पर हल निकल जाता है तो संबंधित महकमे के लोग इस ओर से आंखें मूंद लेते हैं। इसी तरह की उदासीनता की वजह से हर कुछ समय के बाद दिल्ली के निवासियों के सामने पीने के पानी तक की मुश्किल खड़ी हो जाती है। खासतौर पर जाड़े का मौसम शुरू होने के वक्त यह समस्या ज्यादा गहरा जाती है। लेकिन इस बार करीब दो महीने पहले ही यमुना में लगातार औद्योगिक कचरा प्रवाहित किए जाने की वजह से इसके पानी में अमोनिया का स्तर बढ़ गया है। जल बोर्ड के मुताबिक सोमवार को यमुना में अमोनिया का स्तर 3.2 पीपीएम तक पहुंच गया था। अंदाजा लगाया जा सकता है कि यह पानी लोगों की सेहत के लिए कितना खतरनाक साबित हो सकता है। यही वजह है कि दिल्ली जल बोर्ड के तीन संयंत्रों को पूरी तरह बंद कर देना पड़ा और कई इलाकों के लोगों को पानी की कटौती का संकट झेलना पड़ रहा है।

दिल्ली सरकार का कहना है कि हरियाणा के सोनीपत से यमुना में औद्योगिक कचरा प्रवाहित हो रहा है, जिससे इसके पानी में अमोनिया का स्तर बढ़ा। लेकिन यह कोई पहली बार खड़ी हुई समस्या नहीं है। पिछले कई सालों से लगातार यह स्थिति बनी हुई है। सवाल है कि बार-बार शिकायतें मिलने के बावजूद सरकारों के सामने कौनसी मजबूरियां हैं जिनके चलते वे जहरीला पानी छोड़ने वाली औद्योगिक इकाइयों के खिलाफ सख्ती नहीं बरत पाती हैं? यमुना की सफाई के नाम पर अब तक अरबों रुपए बहाए जा चुके हैं। लेकिन अगर इसमें घुलते जहरीले रसायनों से एक ही तरह की समस्या खड़ी हो जाती है तो आखिर वे पैसे किस काम पर खर्च किए गए? सालों पहले से यह दावा किया जाता रहा है कि सफाई अभियान चला कर यमुना को लंदन की टेम्स नदी की तरह स्वच्छ बना दिया जाएगा। लेकिन आज भी यमुना की हालत देखी जा सकती है कि कई बार इसका पानी नहाने तक के लिहाज से जोखिम भरा माना जाता है। ऐसी स्थिति में पीने की जरूरत के लिए पानी के संकट का अंदाजा भर लगाया जा सकता है।

दरअसल, बरसात के दिनों को छोड़ दिया जाए तो यमुना वैसे ही प्रदूषण की वजह से किसी नदी के बजाय एक बड़े नाले के रूप में बची दिखती है। इसके बावजूद इसके बचे हुए हिस्से से ही जलशोधन संयंत्रों के जरिए दिल्ली में पीने के पानी की बड़ी जरूरत पूरी होती है। मगर जब समूची दिल्ली में पीने तक के पानी पर संकट आ खड़ा होता है तब जाकर आनन-फानन में तात्कालिक उपाय किए जाते हैं। सवाल है कि यमुना जिन इलाकों से गुजरती है, उन राज्यों के संबंधित महकमे यह सुनिश्चित कर पाने में नाकाम क्यों हैं कि नदी में औद्योगिक इकाइयों से निकले जहरीले रसायन नहीं बहाए जा सकें। अगर दिल्ली में यह समस्या हर साल गहरा जाती है तो हरियाणा के साथ मिल-बैठ कर इसके किसी स्थायी हल तक पहुंचने की जरूरत क्यों नहीं लगती है? फिर यमुना में अगर अब भी औद्योगिक कचरा घुल रहा है तो ऐसी स्थिति में सरकारों की क्या जिम्मेदारी बनती है? नदी समूचे समाज के लिए जीवन होती है। लेकिन अरबों के खर्च के बावजूद उसे बचाने का काम अब तक कागजों पर ही दिखता रहा है।

## कल्पमेधा

**हम ऐसा मानने की गलती कभी न करें कि कोई अपराध आकार में छोटा या बड़ा होता है।**
**-महात्मा गांधी**

# गांधी को समझने का समय

जगमोहन सिंह राजपूत

**भारत में अवैध खनन, जंगलों की कटाई, जमीन का दुरुपयोग, नदियों के आसपास अतिक्रमण के दुष्परिणाम अब भयावह रूप में सामने आने लगे हैं। कई बार लगता है कि बहुत देर हो चुकी है। आज अगर गंगा प्रदूषित है, तो सत्तासीनों के शर्मनाक लालच का उसमें कम योगदान नहीं है। अनगिनत उदाहरण हैं। कारण स्पष्ट है, नेताओं और गांधी का दम भरने वालों ने गांधी के जाने के बाद उनके सिद्धांतों से पूरी तरह मुंह मोड़ लिया है।**

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिस तेजी से भारत में गांधी दर्शन और भारत की उनकी समझ की गहराई से उपजी विकास की दृष्टि को नकारा गया, उनके सैद्धांतिक और व्यावहारिक जीवन मूल्यों को भुला दिया गया, उसके परिणाम अब दिखाई देने लगे हैं। यदि केवल कृषि और छोटे उद्योगों के विकास के संबंध में उनकी अवधारणा को अपनाया गया होता तो आज किसान का जीवन सम्मानपूर्ण और गरिमामय होता, शहरों की ओर युवाओं की दौड़ सीमित होती! गांधी दर्शन पर विचार-विमर्श इस शताब्दी के प्रारंभ से कुछ इसी तर्ज पर हो रहा है। सन 1909 में 'हिंद स्वराज' के सौ वर्ष पूरे होने से 2019 में उनके जन्म के एक सौ उनसठ वर्ष के समारोहों के बीच के दशक में यह चर्चा जारी रही है। गांधी के जीवनवृत्त का गहन अध्ययन करने वाले आगे भी उनके व्यक्तिव विकास को लेकर उसे और गहराई से समझाने का प्रयास करते रहेंगे।

चालीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने हिंद स्वराज लिखा था। लोगों ने अधिक ध्यान नहीं दिया। बाद में भी उसका सार-तत्व समझने में पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित लोगों ने अधिक दिलचस्पी नहीं दिखाई, क्योंकि उसमें निहित अनेक विचार और विश्लेषण इन लोगों को सतही तौर पर अव्यावहारिक लगते थे। उसके पीछे के दर्शन और गहन चिंतन का जिन्होंने गहराई से अध्ययन किया, केवल वे उसे प्रारंभिक वर्षों में सही ढंग से समझ पाए। आइंस्टीन ने जब सापेक्षता का सिद्धांत दिया था, तब भी अनेक वर्षों तक वैज्ञानिकों में उसे समझ पाने वाले गिने-चुने लोग ही थे। समय के साथ उसका क्रांतिकारी महत्त्व विज्ञान जगत में उजागर हुआ। लगभग उसी प्रकार आज हिंद स्वराज और गांधी दर्शन का अध्ययन करने वालों की संख्या सारे विश्व में लगातार बढ़ रही है और यह वैचारिक विमर्श जीवन के हर पक्ष तक विस्तार पा रहा है।

जिस पश्चिमी सभ्यता के प्रति युवा गांधी ने तल्खी से लिखा था और अनेक आशंकाएं व्यक्त की थीं, उसका असली स्वरूप अब सभी के समक्ष उभर आया है। गांधी ने जीवन के लगभग हर पक्ष पर चिंतन किया और लिखा। उन्होंने गुजराती में बाल पोथी लिखी, शब्दकोश लिखा, बाद में अखबार निकाले, स्वास्थ्य पर लिखा, भाषा पर लिखा, युवाओं के लिए लिखा, प्राकृतिक चिकित्सा पर लिखा, जो लिखा उसे व्यवहार में लाए, अधिकतर तो व्यवहार में लाने के बाद लिखा। हिंद स्वराज लिखने के समय जब एक हाथ थक जाता था तो वे दूसरे से लिखने लगते थे। व्यक्ति निर्माण और शिक्षा का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिस पर उन्होंने लिखा न हो। मातृभाषा, सदाचार, स्त्री शिक्षा, देश भक्ति, आप जो ढूंढ़ें, उनके लेखन में मिल जाएगा।

आज हम शिक्षा में कौशलों की अनुपस्थिति पर चिंता व्यक्त करते हैं, गांधी चमड़े की चप्पल बना कर वाइसराय तक को भेंट करने में नहीं हिचकते थे। स्वच्छता के लिए जो उन्होंने किया और लिखा, उसका अनुपालन कितना आवश्यक था, इसकी पहचान अब हो रही है। हर शहर में कूड़े के ढेर लगे हैं जो बढ़ते ही जा रहे हैं। स्वच्छ भारत अभियान ने लोगों का ध्यान तो आकर्षित किया है, मगर दृष्टिकोण परिवर्तन एक कठिन और समय लेने वाली प्रक्रिया है और देश उसी से गुजर रहा है।

युवाओं के लिए गांधी के व्यक्तित्व विकास को समझने में उनके कुछ कालजयी कथन अत्यंत सहायक हो सकते हैं। इनमें पहला है कि 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है'। आज वैश्वीकरण और निजीकरण की चकाचौंध भरी दौड़ में विश्व केवल बाजार बन कर रह गया है, इस दौड़ की भयानक आशंकाएं अब उभर कर सामने आ रही हैं और इनसे हर पीढ़ी शंकित और आशंकित हैं। स्कूलों में विद्यार्थी और बाहर युवा अब समझने लगे हैं कि यह प्रश्न अब सामने दिखाई दे रहा है कि पृथ्वी कितने वर्ष और बचेगी? यह कपोल कल्पना नहीं रही है, वैज्ञानिक अनुमान लगा चुके हैं कि यदि सारा विश्व अमेरिका या यूरोप के स्तर का जीवन यापन करने लगे तो क्रमशः पांच या तीन ऐसे ही अन्य पृथ्वी ग्रहों की आवश्यकता होगी! दो फरवरी 1925 को गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था कि भारत कर्मभूमि है, भोग भूमि नहीं। भारत का मिशन, लक्ष्य, उद्देश्य अन्य से भिन्न है। यह देश अपने आत्मिक बल के आधार पर सदा सराहा गया है, यहां लोग जीवन के लक्ष्य, उद्देश्य और अध्यात्म को समझाने, सीखने और आत्मसात करने सदा आते रहे

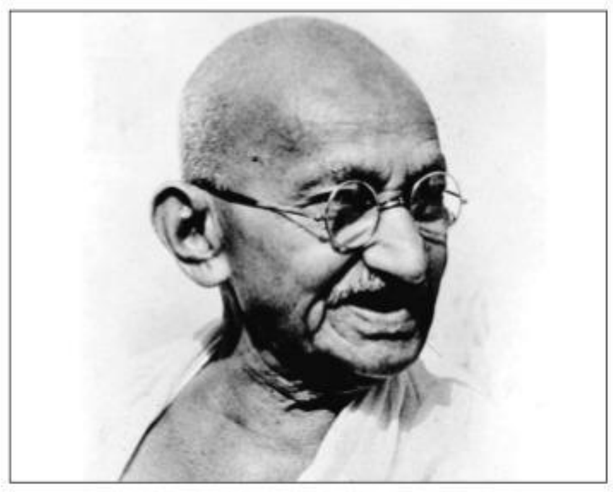

हैं, और आते रहेंगे। तलवारों और हथियारों की विजय क्षणिक होती है, अध्यात्म और आत्मबल की स्वीकृति सदा के लिए होती है। गांधी इसे भारत का वैश्विक उत्तरदायित्व मानते थे। वे कहते थे-'अहिंसा के पंथ पर चलते हुए मेरा जीवन भारत की सेवा के लिए समर्पित है।' भारत का रास्ता पश्चिम का खूनी रास्ता नहीं है, वह तो साधारण-सामान्य-सरल और ईश्वर-प्रिय आचरण से पनपता है। यही तो भारत की आत्मा है। भारत में इतनी ऊर्जा और इच्छाशक्ति होनी चाहिए कि वह पश्चिम से आ रहे भौतिकवाद के तूफान का धैर्यपूर्वक विश्लेषण कर जहां आवश्यक हो वहां प्रतिरोध भी कर सके, सभी कुछ आंख मूंद कर स्वीकार न किया जाए। यदि हम ध्यान से देखें तो अपरिग्रह की संस्कृति के महत्त्व की सामान्य जनजीवन में सार्वजानिक स्वीकृति का दूसरा उदाहरण किसी अन्य समाज और सभ्यता में इतनी गहनता से नहीं मिलता है जितना बल इस पर प्राचीन भारत के समाज और सभ्यता में मिलता है। विश्व में सारा द्वंद्व, भयानक प्रतिस्पर्धा, आयुधों पर बेतहाशा व्यय, हिंसा और तनाव तो अनियंत्रित संग्रह को लेकर ही है। इसे सरल और संक्षेप में गांधी ने सबके सामने रखा-'प्रकृति में सभी की आवश्यकता पूर्ति के लिए संसाधन उपलब्ध हैं, मगर एक के भी लालच के लिए नहीं।' अफ्रीका के नए स्वतंत्र हुए देशों के अनेक उदाहरण दिए जाते हैं जहां एक सत्तासीन के लालच ने सारे देश की प्राकृतिक धरोहर को बर्बाद कर दिया। भारत में अवैध खनन, जंगलों की कटाई, जमीन का दुरुपयोग, नदियों के आसपास अतिक्रमण के दुष्परिणाम अब भयावह रूप में सामने आने लगे हैं। कई बार लगता है कि बहुत देर हो चुकी है। आज अगर गंगा प्रदूषित है, तो सत्तासीनों के शर्मनाक लालच का उसमें कम योगदान नहीं है। अनगिनत उदाहरण हैं। कारण स्पष्ट है, नेताओं और गांधी का दम भरने वालों ने गांधी के जाने के बाद उनके सिद्धांतों से पूरी तरह मुंह मोड़ लिया है।

इस एक सौ पचासवें वर्ष में क्या गांधी चर्चा अपना कुछ प्रभाव डाल सकेगी? क्या आज के राजनेता कुछ छोटे-छोटे प्रकरण याद रख कर अपना जीवन संवारना चाहेंगे? उनके लिए यह जानना लाभकारी होगा कि गीता का अध्ययन गांधी को जीवन पर्यंत संबल देता रहा! बचपन में हरिश्चंद्र नाटक का उन पर प्रभाव पड़ा था। दक्षिण अफ्रीका में जिस पुस्तक का उन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा था, वह थी रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' जिसे हाथ में लेकर वे छोड़ ही नहीं सके। एक बार पढ़ कर उन्हें उस रात नींद नहीं आई। वे लिखते हैं- 'मेरा विश्वास है कि जो चीजें मेरे अंदर गहराई में छिपी पड़ी थीं, रस्किन के ग्रंथ-रत्न से मैंने उनका स्पष्ट प्रतिबिंब देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझ से उसमें दिए गए विचारों पर अमल कराया। जो मनुष्य हम में सोई हुई उत्तम भावनाओं को जागृत करने की शक्ति रखता है, वह कवि है।' इसके प्रभाव में आकर गांधी लिखते हैं कि सर्वोदय के सिद्धांत को वे इस तरह समझते हैं: 'एक- सबकी भलाई में हमारी भलाई है, दो- वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है, तीन- सादा मेहनत-मजदूर का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।'

क्या भारत में इसका पुनर्पाठ संभव होगा?

# समांतर संघर्ष

भावना मासीवाल

एक संयोग है कि 'बा' और 'बापू' के जन्म के लिहाज से देखें तो दोनों के ही डेढ़ सौ साल हो गए। 'बापू' यानी महात्मा गांधी को तो हम सभी विद्यालयी पाठ्यक्रम की किताबों से लेकर व्यावहारिक शिक्षा में परिवार और समाज में पढ़ते आ रहे हैं, लेकिन 'बा' यानी कस्तूरबा गांधी की चर्चा कम होती है। 'बा' से मेरी पहली पहचान बापू के जीवन परिचय को पढ़ने के दौरान हुई। फिर महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' पढ़ी तो जाना कि एक हद तक सीमित पहचान वाली 'बा' ही 'बापू' के प्रयोग यानी अहिंसा, आत्मबल, संयम, उपवास, ब्रह्मचर्य, विश्वास, धैर्य, आत्मविश्वास, निष्ठा, कर्तव्य, सादगी की भोक्ता और दृष्टा रहीं। यही प्रयोग वैश्विक स्तर पर बापू के 'सत्य के प्रयोग' बने, जिन पर भारत और विश्व में खूब चर्चा हुई, लेकिन 'बा' यानी कस्तूरबा गांधी चर्चा का विषय नहीं बन सकीं। जबकि वे आजादी की लड़ाई में अपनी पूरी निष्ठा और बलिदान के साथ मौजूद थीं।

'बा' ने अपने पूरे परिवार, पति, बच्चों को समाज और देश सेवा के प्रति न केवल समर्पित कर दिया, बल्कि अपना जीवन भी प्रेम, समर्पण, त्याग और सेवा के माध्यम से देश को सौंप दिया। सवाल है कि क्या व्यक्ति का शिक्षित वैचारिक आग्रह और राजनीति में सक्रिय हस्तक्षेप ही उसे पहचान दिलाता है? क्या नेपथ्य में काम करने वाले हाथ महत्त्वपूर्ण नहीं? हर पुरुष की सफलता में एक स्त्री का सहयोग होता है। लेकिन मोहनदास करमचंद गांधी को 'महात्मा' बनने में हर स्तर पर सहयोग करने वाली कस्तूरबा गांधी को इतिहास में वाजिब अहमियत नहीं मिल सकी। हालांकि गांधी खुद मानते थे कि 'बा' से ही उन्होंने जीवन में आत्मसंयम और संतुलन सीखा। बापू का जीवन, उनके जीवन के द्वंद्व, तनाव, संघर्ष- सभी कुछ को 'बा' ने संभाला। वे तो परिवार से विरक्त समाज और देश हित के लिए काम करते थे। दूसरी ओर 'बा' परिवार और उसके उद्देश्यों के बीच सामंजस्य लाकर बच्चों को उनसे जोड़ती हैं। वे कस्तूरबा गांधी ही थीं, जो मोहनदास करमचंद गांधी के अहिंसा के सिद्धांत की नींव थीं। सिद्धांत के व्यवहार में सफल प्रयोग से ही सिद्धांत की उपयोगिता सिद्ध होती है।

**दुनिया मेरे आगे**

भारत की आजादी के आंदोलन में कस्तूरबा गांधी ही वह महिला थीं, जिन्होंने महिलाओं को निजी दायरे से बाहर निकाला और आजादी के आंदोलन में सार्वजनिक भागीदारी का हिस्सा बनाया, आजादी में महिलाओं की अहम भूमिका सुनिश्चित की। 'बा' को लगता था कि महिलाओं को भी असहयोग आंदोलन में सक्रिय योगदान देना चाहिए। वे घर-घर जाकर महिलाओं को असहयोग के दूसरे दौर में भाग लेने के लिए प्रेरित कर रही थीं। उनको समझा रही थीं कि शराब की दुकानों पर धरना दो, यही देश की आजादी की दुश्मन है।

'बा' का महिलाओं का नेतृत्व करना और उन्हें आंदोलन का हिस्सा बनाना दरअसल उनके सरल और अभिमान रहित व्यवहार का प्रभाव था। आशा प्रसाद ने 'कस्तूरबा, कमला, प्रभावती' पुस्तक में लिखा है कि 'बा' के इसी व्यवहार ने देश की साधारण और गरीब स्त्रियों के हृदय जीत लिए थे। इसी कारण नमक सत्याग्रह के समय या अन्य अवसरों पर वे स्त्रियां घर की चारदिवारी से बाहर आईं, समय-समय पर लाठियां खाईं और जेल गईं।' यहां जाति, वर्ग, धर्म किसी भी तरह का भेदभाव नहीं था, बल्कि 'आजादी' के पूरे आंदोलन का एक मत था।

यही वह दौर था जब स्त्रियां सक्रिय रूप से राजनीति और आंदोलन का हिस्सा बन कर उभर रही थीं। यह 'बा' चरित्र का ही गुण था कि महिलाओं ने आजादी के आंदोलन में अपनी भूमिका को पहचाना। बिहार में चंपारण आंदोलन के बाद 'बा' के नेतृत्व में ही 1922 के असहयोग आंदोलन का कार्यभार आया। असहयोग आंदोलन में नेतृत्व के कारण बापू को मार्च 1922 में छह वर्ष के लिए जेल की सजा हो गई। बापू को कारावास में डाले जाने के बाद निराश लोगों को 'बा' संभालती हैं। आशा प्रसाद के मुताबिक, 'उस समय कस्तूरबा का रूप एक वीरांगना की तरह लोगों के सामने उभरा। उन्होंने राष्ट्र के नाम यह हृदय-स्पर्शी संदेश दिया- 'गांधी को दी गई सजा का उत्तर भारत इस तरह से देगा- एक, सभी स्त्री-पुरुष विदेशी कपड़ा पहनना छोड़ दें, खुद खादी पहनें और दूसरों को खादी पहनने के लिए बाध्य करें, दो, सभी स्त्री-पुरुष प्रतिदिन कताई को अपना धार्मिक कर्तव्य समझें और दूसरों को भी कातना सिखाएं-समझाएं और तीन, सभी व्यापारी विदेशी कपड़ों का व्यापार करना छोड़ दें। इस संदेश के बाद विदेशी कपड़ों की होली जलने लगी और घरों में चरखे की धूम मचने लगी।'

असहयोग आंदोलन के बाद 1932 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी 'बा' ने सक्रिय होकर महिलाओं का नेतृत्व संभाला और जेल भी गईं। साहसी, सुदृढ़ और विवेकशील निर्णय लेने वाले व्यक्तित्व के साथ ही अनासक्त और सादगी भरा जीवन उन्हें प्रभावी बनाता था। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया और समाज में व्याप्त इस जड़ बुराई का डट कर सामना किया। उनका समर्पण उनके परिवार से अधिक मानवता और देश के प्रति था। 'बा' का जीवन भारतीय स्त्री जीवन का यथार्थ है। ऐसा यथार्थ जो स्त्री होकर बेटी, पत्नी, मां और समाज सेविका जैसे सभी रूपों में संघर्षरत था।

# गांधी का रास्ता

आधुनिक भारतीय चिंतन प्रवाह में गांधी के विचार सार्वकालिक हैं। जैसे-जैसे दुनिया बदल रही है, महात्मा गांधी उतने ही ज्यादा प्रासंगिक होते जा रहे हैं। वे दो अक्तूबर के अलावा भी पूरे विश्व में याद किए जाते हैं। यही प्रमाण है कि वे विश्व विभूति हैं। महात्मा गांधी कभी अमेरिका नहीं गए लेकिन आज पूरे विश्व में भारत के बाद अमेरिका में ही उनकी सबसे अधिक प्रतिमाएं लगाई गई हैं। वे अहिंसा और सत्याग्रह के अग्रदूत थे। अंग्रेजी राज को घुटने टिकाने वाले उनके इस मंत्र का जन्म दक्षिण अफ्रीका में हुआ था। सत्याग्रह से लेकर सामूहिक रिहाइश, अपना काम खुद करने की सलाह और पर्यावरण संबंधी कदम (जैसे मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल और जल संरक्षण) जैसे विचार फीनिक्स सेटलमेंट के गांधी आश्रम में जन्मे और पनपे।

गांधी को समझना आसान नहीं, विशेषतः अगर बात उनके अर्थशास्त्र की हो तो। इसका मुख्य कारण यह है कि गांधी विश्व की नैतिक समझ के कारण अपने निष्कर्षों तक पहुंचे, न कि विकास, निवेश, मांग या पूर्ति की समझ के कारण। यही वजह है कि उनके अर्थशास्त्र के विचारों को वामपंथी-दक्षिणपंथी-मध्यमार्गी-कम्युनिस्ट-समाजवादी-पूंजीवादी खांचों में रख पाना संभव नहीं है। वे स्वदेशी, ग्रामीण आत्मनिर्भरता, बड़े उद्योगों के बजाय कुटीर और छोटे उद्योगों और उत्पादन में मशीनों की अपेक्षा श्रम के इस्तेमाल में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि 'इसमें कोई संदेह नहीं कि पूंजी निर्जीव है, पर पूंजीवादी सजीव हैं और उन्हें परिवर्तन के लिए तैयार किया जा सकता है।'

गांधीजी के कई बयान हैं जिन्हें टिकाऊ विकास के लिए उनके विश्वव्यापी दृष्टिकोण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। उन्होंने 1931 में लिखा था कि भौतिक सुख और आराम के साधनों के निर्माण और उनकी निरंतर खोज में लगे रहना ही अपने आप में एक बुराई है। शायद यही कारण है कि मार्टिन लूथर किंग, दलाई लामा, नेल्सन मंडेला, आग सान सू ची और अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा तक बापू से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। गांधीजी की आत्मा गांवों में निवास करती थी। उनका मानना था कि किसी देश को जानने के लिए उस देश की राजधानी में नहीं बल्कि उस देश के गांव में जाना चाहिए। दुर्भाग्य है कि गांधी के ही देश में उनके आदर्श विचारों की कद्र नहीं है। आज के दौर में भारत ही नहीं बल्कि विश्व समुदाय को भी समझना होगा कि गांधी के सुझाए रास्ते पर चल कर ही एक समृद्ध, सामर्थ्यवान, समतामूलक और सुसंस्कृत विश्व का निर्माण किया जा सकता है।

● *अजय प्रताप तिवारी, गोंडा, उत्तर प्रदेश*

## आपदा और चुनौती

पटना में भारी बारिश के चलते उपमुख्यमंत्री के घर में पानी घुस जाने पर उनके परिवार को बचाव दल ने निकाला। खास लोगों का यह हाल रहा तो आमजन का क्या हाल होता है यह पीड़ा जनसेवकों को दिल की गहराइयों से महसूस करनी होगी। बिहार सरकार सुशासन का दावा करती है, लेकिन भारी बारिश ने उसके विकास, निर्माण, सुव्यवस्थित नियोजन व सुशासन की धज्जियां उड़ा कर रख दी हैं। आम जनता कितनी परेशानी में होगी, इसका एहसास हमारे नेताओं को होना चाहिए। इन आपदाओं से दूर भागने की बजाय उन्हें चुनौती मान कर नियोजित विकास पर जोर देना चाहिए। केवल सुशासन का ढोल पीटने से काम नहीं चलता। उसके लिए सुशासन को जमीन पर हकीकत के रूप में उतारना होता है।

● *हेमा हरि उपाध्याय अक्षत, खाचरोद, उज्जैन*

**किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश**

**आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com**

## मौसम की मार

पिछले तकरीबन एक दशक से लग रहा है कि भारत में मौसम चक्र बदल रहा है। मौसम विभाग घोषणा कर देता है कि 20 जून को मानसून केरल पहुंच जाएगा। फिर तारीख को आगे बढ़ाने का सिलसिला शुरू होता है। मतलब, मौसम का सटीक पूर्वानुमान अब नामुमकिन होता जा रहा है। जब बादलों को बरसना चाहिए तो बरसते नहीं और जब नहीं बरसना चाहिए तो बाढ़ आ रही है। इस साल सितंबर में बारिश ने पिछले सौ साल के कीर्तिमान को ध्वस्त कर दिया है। जो प्रदेश सूखाग्रस्त थे जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि, उन्हें पानी-पानी कर दिया। इतनी अधिक बारिश कि बिहार और उत्तर प्रदेश में तो सवा सौ से ज्यादा लोग मारे गए। साफ-सुथरे शहर पुणे का हाल देखकर लगा जैसे वहां भूकंप आया हो।

यह असल में जलवायु परिवर्तन का नतीजा है। हम इंसानों द्वारा प्रकृति के अतिशय दोहन का परिणाम है कि जिन देशों का तापमान कभी शून्य से नीचे हुआ करता था आज वह 40 डिग्री को पार कर रहा है। जहां गर्मी पड़ती थी वहां बर्फबारी हो रही है। आज पूरा विश्व मौसम की मार को झेल रहा है। मगर प्रकृति का अनियंत्रित दोहन रोकने को कोई तैयार नहीं है।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

## कब्जे की जमीन

कहना शायद गलत न हो कि जमीन हड़पना हमारी फितरत का ही हिस्सा है। अगर खाली पड़ी सरकारी भूमि हो तो पौ-बारह! बंगले भले ही आलीशान हों लेकिन हमारे 'रैंप' और 'गॉर्ड रूम' सरकारी जमीन पर ही बनेंगे। छोटे घरों के छज्जे, सोकपिट और चहारदीवारी का कुछ हिस्सा सड़कों पर होना भी हमारा हक है। जिम्मेवार महकमा भी अपनी गैरजिम्मेदारी का सबूत देने में पीछे नहीं है। हद तो तब है जब सघन आबादी वाले इलाकों में फुटपाथ का इस्तेमाल धड़ल्ले से पार्किंग के लिए किया जाता है। पुलिस-प्रशासन की नाक के नीचे दुकानदारों द्वारा किए गए अवैध कब्जों का दायरा फुटपाथ के पार तक हो जाता है। क्यों न ऐसी लापरवाहियों के लिए भी त्वरित दंड का प्रावधान हो? राहगीरों के लिए फुटपाथ एक अहम जरूरत है जहां सरकारों की उदासीनता साफ झलकती है। अनधिकृत कब्जे पर सुप्रीम कोर्ट की सख्त टिप्पणी भी बेअसर है। निश्चित रूप से एक ईमानदार कार्ययोजना बनाने की जरूरत है ताकि राहगीरों को अतिक्रमण मुक्त फुटपाथ पर बेरोक-टोक सुरक्षित चलने का हक मिले।

● *एमके मिश्रा, मां आनंदमयीनागर, रातू, रांची*